जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

लौकिक कार्यों की सिद्धि मायाचार से नहीं, पूर्व पुण्योदय से होती है।

- बिन्दु में सिन्धु, पृष्ठ - 27

वर्ष : 27, अंक : 2 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
अप्रैल (द्वितीय) 2004 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी | वार्षिक शुल्क : 25 रुपये, एकप्रति : 2/-

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के 115वीं जन्मजयन्ती (21 अप्रैल) के पावन अवसर पर ह्न

सर्वज्ञ का निर्णय करने में सम्यक् पुरुषार्थ

ह्न गुरुदेव श्री कानजी स्वामी

आत्मा के स्वभाव का निर्णय कहो या सर्वज्ञ का निर्णय कहो ह्न दोनों एक ही है; क्योंकि आत्मा का जो स्वभाव है, वही सर्वज्ञ का है और सर्वज्ञ जैसा ही आत्मा का स्वभाव है, दोनों में परमार्थत: कोई अन्तर नहीं है; इसलिए आत्मा का पूर्ण स्वभाव पहचानने से उसमें सर्वज्ञ की पहचान भी हो जाती है और सर्वज्ञ को पहचाने तो उसमें आत्मा के स्वभाव की पहचान हो जाती है। सर्वज्ञ भगवान ने प्रथम तो अपने पूर्ण स्वभाव की श्रद्धा की और पश्चात् आत्मा में एकाग्र होकर पूर्ण ज्ञानदशा प्रगट की। उस ज्ञान द्वारा भगवान एक समय में सब कुछ जानते हैं। ऐसा जहाँ सर्वज्ञ का यथार्थ निर्णय किया वहाँ अपने में भी अपने रागरहित ज्ञान-स्वभाव का निर्णय हुआ। मेरा स्वरूप परिपूर्ण है। जो रागमिश्रित विचार आते हैं, वह मेरा सच्चा स्वरूप नहीं है। वस्तु का स्वभाव परिपूर्ण ही होता है।

जिसप्रकार जड़ में अचेतनता है, उसमें अंशत: भी ज्ञातृत्व नहीं है; उसीप्रकार आत्मा का ज्ञान स्वभाव है, उसमें ज्ञान परिपूर्ण है और अचेतनता बिल्कुल नहीं है। राग भी अचेतनता के सम्बन्ध से होता है; इसलिए राग भी ज्ञान-स्वभाव में नहीं है ह्न ऐसे ज्ञान स्वभाव का निर्णय करना ही धर्म का प्रारम्भ है।

प्रश्न : सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में जब धर्म का प्रगट होना ज्ञात हुआ होगा; उसीसमय आत्मा में धर्म प्रगट होगा, इससमय यह सब समझने की क्या जरूरत है ?

उत्तर : तुम्हें आत्मा के धर्म की रुचि नहीं है; इसलिए ऐसी बातें करते हो। अरे भाई ! 'सर्वज्ञ भगवान ने सब कुछ देखा है और उसीप्रकार सब कुछ होता है' ह्न ऐसे सर्वज्ञ के ज्ञान का और वस्तु के स्वभाव का निर्णय किसने किया? जिस ज्ञान द्वारा सर्वज्ञता और वस्तु के स्वरूप का निर्णय होगा वह ज्ञान आत्मस्वभावोन्मुख हुए बिना नहीं रहेगा।

जिसने आत्मा के पूर्णज्ञान सामर्थ्य को प्रतीति में लेकर उसमें ही एकाग्रता की है, वास्तव में उसी को सर्वज्ञ के ज्ञान की प्रतीति हुई है। जो राग को अपना स्वरूप मानकर राग का कर्त्ता होता है और रागरहित ज्ञान-स्वभाव की श्रद्धा नहीं करता है, उसे सर्वज्ञ का सच्चा निर्णय नहीं है; अत: सर्वज्ञ के निर्णय में ही ज्ञानस्वभाव के निर्णय का सच्चा पुरुषार्थ है और वही धर्म है। लोगों को बाह्य धूमधाम में ही पुरुषार्थ लगता है; अन्तर में ज्ञानस्वभाव के निर्णय में ज्ञाता-दृष्टापने का सम्यक् पुरुषार्थ है, उसे बहिर्दृष्टि लोग नहीं जानते। वास्तव में ज्ञायकपना ही आत्मा का सम्यक् पुरुषार्थ है।

प्रश्न : भगवान ने देखा होगा तभी मोक्ष होगा; प्रयत्न क्यों करें ?

उत्तर : अरे ! मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीव मोक्ष के पुरुषार्थपूर्वक ही मोक्ष प्राप्त करेंगे। बिना पुरुषार्थ के मोक्ष प्राप्त हो जायेगा ह्न ऐसा भगवान ने नहीं देखा। **जब भगवान ने देखा होगा तब मोक्ष होगा** ह्न ऐसे यथार्थ निर्णय में ही मोक्षमार्ग का सम्यक्पुरुषार्थ भी होता है। ●

जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित न करने से रोष

जयपुर (राज.) : दिनांक 28 मार्च, 2004 को दिगम्बर जैन नसियां भट्टारकजी में आयोजित विशालसभा को संबोधित करते हुये अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी के अध्यक्ष श्री एन. के. सेठी, लोकायुक्त श्री मिलापचन्दजी जैन, पूर्व न्यायाधीश श्री जसराजजी चौपड़ा, रिटायर्ड आई. ए. एस. श्री पी.एन. भण्डारी तथा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामंत्री डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने कहा कि राजस्थान की जैनसमाज को शीघ्र ही अल्पसंख्यक का दर्जा दिया जाना चाहिये, यदि यह दर्जा नहीं दिया गया तो आन्दोलन छेड़ दिया जायेगा; क्योंकि जैनसमाज अल्पसंख्यक दर्जे का वास्तविक हकदार है। जैन समाज को 9 राज्यों - महाराष्ट्र, बिहार, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश और पश्चिम बंगाल में धार्मिक अल्पसंख्यक घोषित किया जा चुका है।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में जैनसमाज को अल्पसंख्यक घोषित करने के लिये पिछली कांग्रेस सरकार ने 19 सितम्बर, 2003 को अध्यादेश जारी किया था। जिसकी अवधि 6-7 मार्च, 2004 को पूरी हो गई; किन्तु राज्य में भाजपा की सरकार आने के बाद इसे कानूनी जामा नहीं पहनाया जाने से समाज में असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो गई है।

भाजपा के प्रदेश उपाध्यक्ष श्री चन्द्रराजजी सिंघवी ने उसीसमय सार्वजनिक निर्माणमंत्री श्री गुलाबचन्दजी कटारिया एवं मुख्यमंत्रीजी श्रीमती वसुन्धरा राजे सिंधिया से फोन पर बात करके जैनसमाज को विश्वास दिलाया कि उनकी मांग पर सरकार यथाशीघ्र ही विचार करेगी। ●

सम्पादकीय –

पञ्चास्तिकाय परिशीलन

7

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

गाथा ५

जेसिं अत्थि सहाओ गुणेहिं सह पज्जएहिं विविहेहिं।
ते होंति अत्थिकाया णिप्पण्णं जेहिं तेल्लोक्कं।।5।।

(हरिगीत)

अनन्यपन धारण करें जो विविध गुण पर्याय से।
उन अस्तिकायों से अरे त्रैलोक यह निष्पन्न हैं।।5।।

जिन्हें विविध गुणों और पर्यायों के विस्ताराक्रम के तथा प्रवाहक्रम के अंशों के साथ अपनत्व है, वे अस्तिकाय हैं। इन पंचास्तिकायों से ही तीन लोक निष्पन्न हैं।

इस गाथा की समयव्याख्या नामक टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने जो पाँच अस्तिकायों का अस्तित्व और कायत्व सिद्ध करते हुए कहा है, उसका सार इसप्रकार है ह्न

''वास्तव में अस्तिकायों को विविध गुणों और पर्यायों के साथ स्वपना, अपनापन या अनन्यपना है। वस्तु की व्यतिरेकीविशेष पर्यायें हैं और उसके अन्वयीविशेष गुण हैं। इसलिए एक पर्याय से प्रलय को प्राप्त होनेवाली, अन्य पर्याय से उत्पन्न होनेवाली और अन्वयी गुण से ध्रुव रहनेवाली एक ही वस्तु को व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य लक्षण घटित होता ही है।

यदि गुणों तथा पर्यायों के साथ वस्तु को सर्वथा अन्यत्व हो, तब तो अन्य कोई विनाश को प्राप्त होगा, अन्य कोई प्रादुर्भाव को प्राप्त होगा और कोई अन्य ध्रुव रहेगा ह्न इसप्रकार सब विप्लव हो जायेगा; इसलिए पाँच अस्तिकायों संबंधी उपर्युक्त कथन सत्य है, योग्य है और न्याययुक्त है।''

इसप्रकार अस्तित्व का कथन करके अब कायत्व का स्पष्टीकरण करते हैं- ''जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पदार्थ अवयवी हैं और प्रदेश इनके अवयव हैं, अवयवों में परस्पर व्यतिरेक होने पर भी कायत्व की सिद्धि घटित होती है; क्योंकि परमाणु निरवयव होने पर भी उनको सावयवपने की शक्ति का सद्भाव है।

यहाँ ऐसी आशंका करना योग्य नहीं है कि पुद्गल के अतिरिक्त अन्य पदार्थ अमूर्तपने के कारण अविभाज्य होने से उनके सावयवपने की कल्पना न्यायविरुद्ध है, अनुचित है; क्योंकि आकाश अविभाज्य होने पर भी उसमें 'यह घटाकाश है, यह अघटाकाश (पटाकाश) है' ह्न ऐसी विभागकल्पना दृष्टिगोचर होती ही है। इसलिए कालाणुओं के अतिरिक्त अन्य सर्व में कायत्व नाम का सावयवपना निश्चित रूप से है।

उन छह द्रव्यों से जो तीन लोक की निष्पन्नता कही, वह भी उनका अस्तिकायपना सिद्ध करने के साधनरूप से ही कही है। जो इसप्रकार है ह्न

तीनलोक के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यवाले भाव, जो कि तीन लोक के विशेषस्वरूप हैं, परिणमित होते हुए अपने मूल पदार्थों का गुणपर्याययुक्त अस्तित्व सिद्ध करते हैं।

धर्म, अधर्म और आकाश ह्न ये प्रत्येक पदार्थ ऊर्ध्व-अधो-मध्य ह्न ऐसे तीन लोक के विभागरूप से परिणमित होने से उनके कायत्व नाम का सावयवपना है ह्न ऐसा अनुमान किया जा सकता है। प्रत्येक जीव के भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ह्न ऐसे तीन लोक के तीन विभागरूप से परिणमित लोकपूरण अवस्थारूप व्यक्ति की शक्ति का सदैव सद्भाव होने से जीवों को भी कायत्व नाम का सावयवपना हैह्न ऐसा अनुमान किया ही जा सकता है। पुद्गल भी ऊर्ध्व-अधो-मध्य ह्न ऐसे लोक के (तीन) विभागरूप परिणत महास्कन्धपने की प्राप्ति की व्यक्तिवाले अथवा शक्तिवाले होने से उन्हें भी वैसी कायत्व नाम की सावयवपने की सिद्धि है ही।

अब जयसेनाचार्य ने भी आचार्य अमृतचन्द्र के अनुसार ही पंचास्तिकाय के अस्तित्व एवं कायत्व के विषय में बताया है।

इसी ग्रन्थ में बालबोधनी (हिन्दी) टीकाकार श्री पन्नालाल बाकलीवाल लिखते हैं कि ह्न ''इन पंचास्तिकायों को नानाप्रकार के गुण-पर्यायों के स्वरूप से भेद नहीं है, एकता है। पदार्थों में अनेक अवस्थारूप जो परिणमन है, वे पर्यायें कहलाती हैं और जो पदार्थ में सदा अविनाशी साथ रहते हैं, वे गुण कहे जाते हैं। इसकारण एक वस्तु एक पर्याय से उपजती है और एक पर्याय से नष्ट होती है और गुणों से ध्रौव्य है। यह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप वस्तु का अस्तित्व स्वरूप जानना।

इस गाथा पर व्याख्यान करते हुए गुरुदेवश्री कानजी स्वामी ने जो कहा, उसका भाव इसप्रकार है ह्न

''प्रत्येक पदार्थ अपने स्वयं के अनेक गुण-पर्यायों सहित अस्तित्व वाला है। पाँचों अस्तिकाय अनेकप्रकार के सहभूत गुण तथा व्यतिरेक रूप अनेक पर्यायों सहित अस्तित्व स्वभाववाले हैं।

जीव में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, प्रभुत्व आदि अनेक त्रैकालिक शक्तियाँ विद्यमान हैं, पुद्गल के परमाणु में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि, सभी गुण एकसाथ रहते हैं; अत: ये सहभूत कहलाते हैं। पर्यायें एक के बाद एक होती हैं, अलग-अलग होती हैं। जैसे कि आत्मा में शुभभाव के बाद अशुभभाव तथा कम जानना, अधिक जानना आदि ह्न इसप्रकार पर्यायें अलग-अलग होती हैं। परमाणु में भी स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तो कायम रहते हैं; पर उनकी पर्यायें एक के बाद एक होती रहती हैं। आत्मा की पर्याय शरीर अथवा कर्म के कारण नहीं होती और कर्म तथा शरीर की अवस्था आत्मा के कारण नहीं होती। इसप्रकार प्रत्येक अस्तिकाय स्वयं के गुण-पर्यायों सहित अस्तित्ववाला है।

जो पदार्थ हैं, उनका कभी सर्वथा नाश नहीं होता है और जो नहीं है उनकी नवीन उत्पत्ति नहीं होती। पदार्थ स्वयं अपने ही कारण ध्रुव रहते हैं और अपने कारण ही परिणमन करते हैं, पर के कारण नहीं।

आत्मा सदा एक रूप ही रहे, परिणमन न करे तो दु:ख को नष्ट करके सुख प्रगट करना अशक्य होगा।

यदि आत्मा सर्वथा परिणमनशील ही हो और ध्रुव न हो तो दु:ख को नष्ट करके सुख का अनुभव करनेवाला ही नहीं रहेगा, उस स्थिति में सुख का अनुभव भी नहीं होगा। अत: आत्मा तथा प्रत्येक द्रव्य ध्रुवरूप रहकर ही परिणमन करते हैं।

आत्मा में त्रिकाली शक्तियाँ हैं और उनकी एक के बाद एक पर्यायें होती हैं। उनका कर्ता आत्मा स्वयं है। जो स्वतंत्ररूप से कार्य करता है, वही कर्ता है। आत्मा की अवस्था में जड़ का अधिकार नहीं है और जड़ की अवस्था में आत्मा का अधिकार नहीं है। प्रत्येक द्रव्य में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं - एक

त्रिकालीशक्ति और दूसरी वर्तमान अवस्थारूप शक्ति। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उसका स्वभाव है। स्वभाव का कभी नाश नहीं होता और जिसका अस्तित्व नहीं है, वह नया उत्पन्न नहीं होता। जड़ और आत्मा मिलकर पूरा जगत है। जगत कोई भिन्न वस्तु नहीं है। पदार्थ जगत में न हों ऐसा नहीं हो सकता। उसीप्रकार जगत का प्रलय हो जाये ह्न ऐसा भी नहीं हो सकता। जगत पहले नहीं था और फिर नया बना ह्न ऐसा भी नहीं है।

तात्पर्य यह है कि ह्न आत्मा के गुण-पर्याय आत्मा से अभेद हैं तथा जड़ के गुण-पर्याय जड़ से अभेद हैं। प्रत्येक वस्तु स्वरूप से है तथा पररूप से नहीं है ह्न ऐसा वस्तु का स्वभाव है।

द्रव्य से गुण-पर्याय का संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन आदि का भेद है, परंतु क्षेत्र भेद नहीं है। शरीर का रूपान्तर, क्षेत्रान्तर परमाणु के कारण होता है, आत्मा के कारण नहीं। ज्ञानी तो पर का अकर्ता है; परन्तु पर के कर्तृत्व का अहंकार करनेवाला अज्ञानी जीव भी पर का कुछ नहीं कर सकता। यदि आत्मा शरीर का कार्य करे तो आत्मा और शरीर दोनों मिलकर एक हो जायें, आत्मा को जड़ शरीर होना पड़े; क्योंकि **यः परिणमति स कर्ता** के सिद्धान्तानुसार शरीर के कर्ता को शरीररूप होना ही होगा; अन्यथा वह कर्ता नहीं हो सकेगा।

परमाणु का कार्य परमाणु के कारण और आत्मा का कार्य आत्मा के कारण होता है। प्रत्येक पर्याय भी अपनी शक्तियों तथा अवस्थाओं से अभेद हैं तथा अन्य से भिन्न है। जीव की इच्छा होने पर भी कई बार बोल नहीं पाता। पक्षाघात के समय इच्छा होने पर भी शरीर नहीं चलता; क्योंकि इच्छा और शरीर दोनों भिन्न-भिन्न हैं। जीव के कारण जड़ की अवस्था होती है, यह मानना सही नहीं है। आत्मा का काम तो जानना-देखना है। अज्ञानी जीव माने या न माने पर वस्तुस्वरूप तो जैसा है वैसा ही है। प्रत्येक वस्तु अपने गुण-पर्याय से अभिन्न है तथा पर से भिन्न है।

आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि शक्तियाँ हैं तथा उनकी वर्तमान अवस्था हीनाधिक होती रहती है। उसीप्रकार परमाणु की भी स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि शक्तियों की अवस्था पलटती रहती है। इस प्रकार गुणों के कायम रहते हुए अवस्था का पलटना द्रव्य का स्वरूप है। जैसे कि कुण्डल का व्यय होता है, कड़े का उत्पाद होता है और सोना चिकनाहट, वजन आदि शक्तिरूप से ध्रुव रहते हैं।

सर्वज्ञ भगवान ने जो छह पदार्थ देखे हैं, वे छहों अस्तिरूप हैं और उनमें से पाँच अस्तिकायरूप हैं। ये सभी द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायों से टिके हुए हैं, किसी भी द्रव्य के गुण-पर्यायों का किसी अन्य द्रव्य के साथ कोई संबंध नहीं है। पदार्थों का अस्तित्व स्वभाव है और वह उत्पाद-व्यय-ध्रुवता सहित है।

गुण शाश्वत ध्रुव है और पर्याय क्षणिक उत्पाद-व्ययरूप है। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप वस्तु का अस्तित्व है। किसी अन्य की सहायता से किसी पर्याय का उत्पाद नहीं होता। वस्तु स्वयं अपनी सामर्थ्य से नयी-नयी पर्यायरूप उत्पन्न होती है।

वस्तु को सिद्ध करने के लिए द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद से कथन किया है, परन्तु वस्तुत: द्रव्य से उसके गुण-पर्याय सर्वथा भिन्न नहीं हैं। यदि सर्वथा अभिन्न भी नहीं है। सर्वथा अभिन्न हो तो मात्र एक पर्याय जितना अथवा एक गुण जितना ही द्रव्य हो जायेगा। साथ ही 'यह द्रव्य और यह गुण' ऐसा भेद करके कथन भी नहीं हो सकेगा। अत: गुण-गुणी में कथंचित् भेद है, सर्वथा नहीं। वस्तु को समझाने के लिए गुण-पर्याय का भेद करके कथन किया है, लेकिन वस्तु तो अभेद है। इसप्रकार वस्तु को कथंचित् भेदाभेदरूप कहा है।

यहाँ गुरुदेवश्री कानजीस्वामी पाँच द्रव्यों में अस्तिकायपना बताते हैं।

''काया का तात्पर्य इस स्थूल शरीर से नहीं है, बल्कि प्रत्येक वस्तु के अनेक प्रदेशों का जो पिण्ड है, वही उसकी काया है।

यह शरीर इस आत्मा की काया नहीं है, वह तो पुद्गल की काया है। आत्मा के असंख्यात चैतन्य प्रदेश ही आत्मा की काया है। जड़काया आत्मा की नहीं है, वह तो पुद्गलास्तिकाय है। उसमेंआत्मा का अस्तित्व नहीं है। इसलिए जड़ शरीर को आत्मा चलाता है ह्न ऐसा जो मानता है, वह जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय को भिन्न-भिन्न नहीं जानता है।

काल को छोड़कर शेष पाँचों द्रव्यों की काया होती है, काया अर्थात् प्रदेशों का समूह, प्रदेश के सूक्ष्म अविभागी अंश हैं, उन्हें सर्वज्ञ के सिवाय कोई दूसरा जान नहीं सकता है।

जीव के जो असंख्यप्रदेश हैं, वे अंशकल्पना से हैं। जिसप्रकार वे प्रदेश कभी भिन्न-भिन्न नहीं होते हैं; उसीप्रकार धर्म, अधर्म और आकाश के अंश भी भिन्न-भिन्न नहीं होते हैं। पुद्गल का स्कंध होता है और भिन्न-भिन्न होकर उसके अणु भी हो जाते हैं; इसलिए पुद्गल का कायपना उपचार से कहा है।

एक द्रव्य में जो अनेक प्रदेशों की अंशकल्पना है, उसे भी पर्याय कहते हैं। अखण्ड क्षेत्र के अंश हुए इसलिए वह भी पर्याय है। एक प्रदेश अन्य प्रदेशरूप नहीं है। यदि ऐसा न हो तो एक प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप हो जायेगा और वस्तु के अनेक प्रदेश ही सिद्ध नहीं हो सकेंगे। आत्मा के असंख्यात प्रदेश अनादि-अनंत हैं। उसका कोई भी प्रदेश दूसरे प्रदेशरूप कभी भी नहीं होता है। इस प्रदेश की कल्पना को पर्याय कहते हैं। यह क्षेत्र-पर्याय है अर्थात् क्षेत्र की अपेक्षा से इसके उत्पाद-व्यय-ध्रुव कहे जाते हैं। जैसे किसी एक प्रदेश को लक्ष्य में लेवें तो वह प्रदेश स्वयं से उत्पादरूप, पूर्वप्रदेश की अपेक्षा से व्ययरूप और वस्तु के अखण्डक्षेत्र की अपेक्षा से ध्रुवरूप है।

जैसे श्रद्धा-ज्ञानादि भाव की पर्याये हैं उसीप्रकार क्षेत्र की भी पर्यायें हैं। सभी द्रव्यों का अपने स्वरूप से एकत्व है। जैसे गुण-पर्यायों के कथंचित् भिन्न होने पर भी उनसे वस्तु भिन्न नहीं है; उसीप्रकार क्षेत्र के अंशकल्पना से भेद करने पर भी वस्तु में भेद नहीं होता है।

यद्यपि जीव, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश अखंड अमूर्तिक द्रव्य हैं, परन्तु उनमें भी अंश कल्पना हो सकती है। जैसे आकाश एक अखंड अमूर्तिक द्रव्य होते हुए भी उसमें 'यह घटाकाश है और पटाकाश है' ह्न ऐसे विभाग होते हैं। अथवा दो उंगलियाँ हैं, उनमें उन दोनों का क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। जो एक उंगली का क्षेत्र है वह दूसरी उंगली का नहीं है ह्न ऐसा कह सकते हैं। यदि आकाश में अशंकल्पना हो ही नहीं सकती तो दो उंगलियों का क्षेत्र भिन्न-भिन्न कैसे कह सकते हैं।

इसप्रकार कालद्रव्य के अतिरिक्त पाँचों द्रव्यों का अस्तिकायपणा है। इन पाँच द्रव्यों के उत्पाद-व्यय-ध्रुवता से तीन लोक की रचना है। काल सहित इन पाँच द्रव्यों के अतिरिक्त जगत कोई अलग नहीं है। इन छह द्रव्यों का समूह ही जगत है। **(शेष पृष्ठ - 11 पर .....)**

मई शिविर की पत्रिका

मई शिविर की पत्रिका

तत्वचर्चा

प्रवचनसार का सार

5

&Mkwñ gqdepUn HkkfjYy

इस पर हम कहते हैं कि वस्तु तो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। यदि पूर्व पर्याय का विनाश होता है तो उत्तर पर्याय का उत्पाद होता ही है। इसके लिए हम यह उदाहरण भी देते हैं कि जब एक आदमी को नुकसान हुआ तो दूसरे आदमी को फायदा होता ही है। जमीन के भाव कम हुए तो जिसके पास जमीन थी, उसे नुकसान हुआ एवं जिसने खरीदी उसे फायदा हुआ।

जो जन्मेगा, वह मरेगा अथवा जो मरा है, वह अगले समय में कहीं न कहीं जन्मेगा ही। जन्म मृत्यु के बिना नहीं होता एवं मृत्यु जन्म के बिना नहीं होती।

मान लो, कदाचित् ऐसा हुआ कि जन्म के बिना मरण एवं मरण के बिना जन्म हुआ तो उसके स्वभाव में उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व कहाँ रहा ? इन तीनों का अस्तित्व वहाँ कैसे रहा ?

यहाँ तो यह कहा जा रहा है कि उत्पाद के बिना नाश एवं नाश के बिना उत्पाद हुआ एवं ऐसी स्थिति में भी उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व कायम रहा।

इसप्रकार आचार्यदेव ने जिसमें विरोध का आभास हो ह्न ऐसे विरोधाभास अलंकार का प्रयोग किया है। इसमें कहा है कि हे भगवन! आपने ऐसा केवलज्ञान एवं अतीन्द्रिय आनंद उत्पन्न किया कि जिसका अनंतकाल तक नाश नहीं होगा।

अभी हमें जो ज्ञान एवं सुख है, वह पल-पल में बदल जाता है, क्षणिक है। हम एक सैकिन्ड में ही यह भूल जाते हैं कि 'मैंने क्या कहा था ?'

परन्तु हे भगवान ! **तुमने शुद्धोपयोग के फल में ऐसा अनंतज्ञान उत्पन्न किया है कि जो अनंतकाल तक कभी नष्ट नहीं होगा; ऐसा अनंतसुख उत्पन्न किया है जो अनंतकाल में भी कभी नष्ट नहीं होगा। भंगविहिणो ही भवो अर्थात् विनाश रहित उत्पाद का यह अर्थ है।**

आपने राग का ऐसा नाश किया कि अनंतकाल में कभी भी पुन: उसका उत्पाद नहीं होगा। फिर भी, हे भगवन ! ध्रौव्य, विनाश और उत्पाद का समवाय आपके अंदर विद्यमान है।

देखो ! इस लौकिकसुख की क्या स्थिति है ? श्रीकृष्ण के वियोग से त्रस्त राधा या गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं, 'हे कृष्ण ! जब आप मिलते हो तब भी जैसा मिलने का आनंद लेना चाहिए, वैसा आनंद हम नहीं ले पाते; क्योंकि आपके वियोग की आशंका से मन दु:खी बना रहता है। आप आने के बाद तुरंत यह कह देते हैं कि मैं परसो जाऊँगा।इसप्रकार हम वियोग में तो वियोग का दु:ख भोगते ही हैं; लेकिन संयोग में भी वियोग की आशंका से वियोग का ही दु:ख भोगते हैं। हमें सुख तो कभी मिला ही नहीं है; न संयोग के काल में और न ही वियोग के काल में।

यदि वियोग में दु:ख है तो संयोग में नियम से सुख होना चाहिए; परन्तु यह संसारसुख ऐसा है कि प्रथम तो इस संसार में सुख है ही नहीं और दूसरे वियोग के काल में हम इसके बिना दु:खी हैं और जब इसका संयोग होता है तो हमें एक क्षण का भी विश्वास नहीं है कि यह कब तक रहेगा ? इसलिए मिलन के काल में भी हम इसका आनंद नहीं ले पाते हैं।

आचार्य यहाँ शुद्धोपयोग के फल की महिमा बता रहे हैं; इसीलिए केवलज्ञान व अनंतसुख की महिमा गा रहे हैं। इसे हम ज्ञानाधिकार का प्रारम्भ भी कह सकते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार को अधिकारों में विभक्त नहीं किया, उन्होंने तो गाथाओं को अविभक्त रखकर ही एक संपूर्ण प्रवचनसार की रचना की है। अमृतचन्द्राचार्य एवं जयसेनाचार्य ने ही इसे अधिकारों में विभाजित किया है। यही कारण है कि इसमें ज्ञान व सुख की चर्चा दोनों अधिकारों में चलती रहती है।

शुद्धोपयोगाधिकार की अन्तिम गाथा में वे कहते हैं कि केवली भगवान के देहगत सुख-दु:ख नहीं हैं। गाथा इसप्रकार है ह्न

सोक्खं वा पुण दुक्खं, केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं, जादं तम्हा दु तं णेयं।।२०।।

(हरिगीत)

अतीन्द्रिय हो गये हैं जिन स्वयंभू बस इसलिए।
केवली के देहगत सुख-दु:ख नहीं परमार्थ से।।२०।।

वे केवली भगवान अतीन्द्रियरूप से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए उनके शरीर सम्बन्धी सुख अथवा दु:ख नहीं है ह्न ऐसा जानना चाहिए।

केवलज्ञानी का सुख देहगत नहीं है, शारीरिक नहीं है अर्थात् वे विषयातीत हैं, उन्हें पंचेन्द्रियजन्य सुख नहीं है; उनका सुख देहातीत है, आत्मोत्पन्न है। यह पंचेन्द्रियाँ देह के अंग हैं एवं केवलज्ञानी का सुख अतीन्द्रिय है। उनका ज्ञान भी अतीन्द्रिय ही है।

यहाँ तक शुद्धोपयोगाधिकार की बात चल रही है।

अब ज्ञानाधिकार आरंभ होता है, जो २१वीं गाथा से ५२वीं गाथा तक चलेगा। इसमें आचार्य केवलज्ञान की महिमा एवं सर्वज्ञता का स्वरूप बताएँगे। ज्ञानाधिकार की इन ३२ गाथाओं में प्रवचनसार का वास्तविक मर्म छिपा है।

उत्थानिका में ही आचार्य कहते हैं कि अब हम ज्ञानप्रपंच आरंभ करते हैं। यहाँ प्रयुक्त प्रपंच शब्द विस्तार के अर्थ में है।

आजकल प्रपञ्च शब्द के अर्थ को सही अर्थ में कोई नहीं समझता। यदि यहाँ गुणस्थानों की गहरी-गहरी चर्चा प्रारंभ हो जाय तो तुरंत कोई न कोई कहेगा कि आप कहाँ प्रपञ्च में पड़ गए।

तो हम नाराज होकर कहने लगेंगे कि क्या जिनवाणी की गहराई से चर्चा करना प्रपञ्च है, हमारी इस जिनवाणी की चर्चा को आप प्रपञ्च कहते हैं, आपको शर्म नहीं आती ?

अरे भाई ! यह कोई अन्य नहीं कह रहा है, आचार्य स्वयं ही कह रहे हैं कि हम ज्ञान के स्वरूप का प्रपञ्च करेंगे। अरे भाई ! यहाँ प्रयुक्त प्रपंच शब्द का अर्थ विस्तार होता है।

८२वीं गाथा की टीका के अन्त में आचार्य लिखते हैं ह्न '**अलमिति प्रपञ्चेन।**' अब इस प्रपञ्च से विराम लेते हैं अर्थात् बहुत विस्तार हो गया है, अब इसे समेटते हैं।

प्रवचनसार के इस अधिकार का वर्ण्यविषय सर्वज्ञस्वभाव का वर्णन है। यहाँ आचार्यदेव सर्वज्ञत्वशक्ति का विस्तार से वर्णन करेंगे; क्योंकि इस **सर्वज्ञता का स्वरूप स्पष्ट हुए बिना जैनदर्शन का आरंभ ही नहीं होता; क्योंकि हमारा जो आगम है, वह सर्वज्ञ की वाणी के आधार पर ही निर्मित हुआ है। यदि उनकी वाणी में, सर्वज्ञता में शंका करें तो हम आगम पर शंका करते हैं। उन्होंने जिसका प्रतिपादन किया, वही तो शास्त्र हैं।** यदि हम उन पर ही अविश्वास करेंगे तो जैनदर्शन ही प्रारंभ नहीं होगा, जैनदर्शन को हम कभी समझ नहीं सकेंगे।

आज हमें जैनदर्शन के नाम पर सर्वज्ञ भगवान की ही वाणी उपलब्ध है। वह सर्वज्ञ की ही वाणी है, जिसके आधार पर देशनालब्धि प्राप्त होती है, आत्मा का अनुभव होता है। संपूर्ण जगत में आज जो जैनदर्शन विद्यमान है, वह सर्वज्ञ की वाणी की ही उपलब्धि है।

सर्वज्ञता के अस्वीकार में न केवल शास्त्रों पर ही, अपितु देव व गुरु पर भी प्रश्नचिह्न लग जायेगा; क्योंकि देव का स्वरूप इसी जिनवाणी में बताया है कि देव वीतरागी, सर्वज्ञ एवं हितोपदेशी होते हैं। यह हमने अनुभव से नहीं जाना है, अपितु शास्त्र द्वारा ही जाना है।

गुरु पीछी-कमण्डलु धारण करते हैं, यह सब शास्त्रों में ही लिखा है। शास्त्रों के आधार से ही मुनिराजों का आचरण सुनिश्चित होता है। शास्त्रों में देखकर ही हम कहते हैं कि यह ठीक आचरण है एवं यह ठीक नहीं है। शास्त्रों के ही आधार से हम ऐसा निर्णय कर पाते हैं।

जितने भी अजैन हैं, वे सभी जैनमुनियों के बाह्य आचरण एवं नग्नावस्था को देखकर ही अभिभूत हो जाते हैं।

कोई अजैन विद्वान आता है तो वह हमारे मुनिराजों को देखकर गद्गद् हो जाता है; क्योंकि उनके यहाँ जिसतरह के परिग्रही गुरु हैं एवं जिसतरह का उनका आचरण है; उनके सन्मुख हमारे मुनिराज बहुत अच्छे लगते हैं।

एक बार राम बगुले की ध्यानमग्न मुद्रा देखकर बहुत प्रभावित हुए एवं बगुले की प्रशंसा करने लगे; तब तालाब की मछलियाँ रामचन्द्रजी से कहती हैं ह्न **वक: किम् स्तूयते राम: येनाहम् निष्कुलीकृता।**

हे राम! इस बगुले की क्या स्तुति करते हो, इसने तो हमारे कुल के कुल साफ कर दिए हैं। इसने ही तो हमारे माता-पिता तथा बच्चों को खा लिया है और हम अकेले रह गए। पड़ोसी ही पड़ोसी की प्रवृत्ति को जान सकता है।

जब कोई मछली बगुले के पास चली जाती है तो वह तुरन्त डुबकी लगाकर मछली को खा जाता है। फिर वैसा का वैसा ही ध्यान की मुद्रा में खड़ा हो जाता है। हम तो इसकी मात्र ध्यानमुद्रा ही देख पाते हैं; इसकी जो ये कुप्रवृत्ति है, उसे नहीं देख पाते हैं। हम उसे मात्र दस-बीस मिनिट ही देख पाते हैं; शेष समय यह कैसा नंगा-नाच करता है; यह हमें पता नहीं है।

उन अभिभूत अजैन विद्वानों ने जिनवाणी नहीं देखी है, जिसमें मुनि का स्वरूप प्रतिपादित है। वे स्वयं के ज्ञान के आधार पर ही उनके आचरण को तौल रहे हैं। उन्हें वास्तविक कसौटी का ही ज्ञान नहीं है। वे श्रावकों से उनकी तुलना करते हैं। वे कहते हैं कि वे हमसे तो अच्छे हैं, वे तुमसे तो अच्छे हैं। इसप्रकार वे जिनवाणी में प्रतिपादित कसौटी को ही नहीं जानते हैं।

इसप्रकार सर्वज्ञता का स्वरूप यदि हमारे समझ में नहीं आयेगा तो देव-शास्त्र-गुरु ह्न इन तीनों पर प्रश्नचिन्ह लग जाएगा।

आचार्यदेव सर्वज्ञता को बताकर एक तरह से देव का ही स्वरूप बता रहे हैं। आगे ८०वीं गाथा में आचार्य कहेंगे कि ह्न

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं।।८०।।

(हरिगीत)

द्रव्यगुणपर्याय से जो जानते अरहंत को।
वे जानते निज आतमा दृगमोह उनका नाश हो।।८०।।

जो अरहंत को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, वह आत्मा को जानता है और उसका मोह निश्चय से नष्ट होता है।

सर्वज्ञस्वभावी अरहंत को सर्वज्ञत्वशक्ति और सर्वज्ञता अर्थात् केवलज्ञान सहित जानने से अपना आत्मा भी समझ में आ जाता है; क्योंकि उनमें और हम में कोई अन्तर नहीं है।

सभी अरहंतों ने स्वयं अनुभूत इसी मार्ग को जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है।

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तधोवदेसं, णिव्वादा ते णमो तेसिं।।८२।।

(हरिगीत)

सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधि।
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधि।।८२।।

सभी अरहंत उसी पद्धति से कर्मांशों का क्षयकर तथा उसीप्रकार उपदेश देकर मोक्ष गये हैं - उन्हें नमस्कार हो।

८६वीं गाथा में आचार्यदेव दूसरा रास्ता सर्वज्ञकथित 'शास्त्रों का सम्यक् प्रकार से अध्ययन करना चाहिए' यह बताते हैं।

इस सभी विवरण से यह स्पष्ट है कि सर्वज्ञता का स्वरूप जानना अत्यंत आवश्यक है।

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जया।
सो णेव ते विजाणदि, उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं।।२१।।

(हरिगीत)

केवली भगवान के सब द्रव्य गुण-पर्याययुत।
प्रत्यक्ष हैं अवग्रहादिपूर्वक वे उन्हें नहीं जानते।।२१।।

वास्तव में ज्ञानरूप से परिणत केवली भगवान के सभी द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष हैं और वे उन्हें अवग्रहादि क्रियाओं पूर्वक नहीं जानते।

केवली भगवान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा पूर्वक नहीं जानते; क्योंकि यह प्रक्रिया तो मतिज्ञान में सम्पन्न होती है। केवली भगवान के जानने में क्रम नहीं है, वे सभी को एकसाथ जानते हैं।

छहढाला में कहा है ह्न

सकल द्रव्य के गुण अनंत परजाय अनंता।
जानै एकै काल प्रगट केवली भगवंता।।

केवली भगवान इन्द्रियों के माध्यम से नहीं जानते हैं; वे एकसाथ एक समय में सब द्रव्यों की सब पर्यायों को प्रत्यक्ष जानते हैं। **(क्रमश:)**

मई शिविर की पत्रिका

मई शिविर की पत्रिका

ज्ञान सम्राट सूरज और नादान हवा

सूरज और हवा में बहस छिड़ी हुई थी। हवा कह रही थी कि हम परद्रव्यमें फेरबदल कर सकते हैं। परद्रव्यों में हमारा हस्तक्षेप चलता है। हम चाहे जो कर सकते हैं।

जबकि सूरज का कहना था कि अरी नादान हवा ! तू कुछ नहीं कर सकती है, क्योंकि तेरा परद्रव्य में अत्यन्ताभाव है, अत: तेरा हस्तक्षेप नहीं हो सकता। तेरी यह बात सर्वथा झूठी है, निराधार और तथ्यहीन है। वस्तुस्वरूप के सर्वथा विपरीत है। क्या तू इस बात को नहीं जानती कि प्रत्येक द्रव्य की पहुँच अपने परिणामों तक ही सीमित है ? जब प्रत्येक द्रव्य, अपने गुण और पर्यायों में ही पसरता है तो पर में कुछ करने-धरने का झूठा अहं तू किसलिये करती है ?

सूरज की बात सुनकर हवा ने कहा ह्न ''झूठा अहं मैं नहीं कर रही, बल्कि तुम स्वयं पुरुषार्थ हीनता की बात कर रहे हो। तुम्हारी ऐसे मान्यता से क्या पुरुषार्थ का लोप नहीं हो जायेगा ?''

क्या परद्रव्य में कुछ फेरबदल कर देने का नाम ही पुरुषार्थ है ? वीतरागी सर्वज्ञ भगवान परद्रव्य में कुछ भी फेरबदल एवं हस्तक्षेप नहीं करते हैं तो क्या वे पुरुषार्थहीन हो गये ? वे पुरुषार्थहीन नहीं; बल्कि अनंत पुरुषार्थ के धनी हैं। पुरुषार्थ के सम्बन्ध में कुछ भी कहने से पहले तुम्हें पुरुषार्थ कहते किसे हैं - इस बात को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

किसे कहते हैं ? पहले तुम ही अपनी बात कह लो, फिर मैं अपनी बात कहूँगी ह्न हवा ने इठलाते हुये कहा।

''स्वभाव के अनुरुप प्रवर्तन करना ही पुरुषार्थ है। जैसे-आत्मा का स्वभाव जानना, देखना है; अत: ज्ञाता-दृष्टारूप से प्रवर्तन करना ही आत्मा का सम्यक् पुरुषार्थ है। राग आत्मा का स्वभाव नहीं है; अत: राग के कारण से कुछ भी फेर बदल करने का परिणाम आत्मा का पुरुषार्थ नहीं है; बल्कि पुरुषार्थहीनता है, मिथ्यापुरुषार्थ है।

अफसोस ! तुम पुरुषार्थ हीनता को ही पुरुषार्थ समझ रही हो। पर में कुछ करने-धरने का नाम पुरुषार्थ नहीं है; बल्कि पर में कुछ भी नहीं करने-धरने का अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा बने रहने का नाम पुरुषार्थ है।''

सूरज के अकाट्य तर्क के आगे हवा निरुत्तर-सी हो गई; परन्तु उसको बात जची नहीं, इसलिये बोली ह्न ''तो क्या मैं अपनी शक्ति से बड़े-बड़े पेड़ों को धराशायी कर देती हूँ। जगत में बड़े-बड़े तूफान उत्पन्न कर देती हूँ - क्या यह सब झूठ है ? क्या यह सब मिथ्या पुरुषार्थ है ? मेरे ही बलबूते पर तो प्राणियों की सांसे चलती है। तुम इन सबको पुरुषार्थ हीनता कहते हो।''

ओ हो ! थोड़ा धैर्य तो रक्खो ह्न सूरज ने कहा। समझने का प्रयास करो। व्यर्थ में आकुल-व्याकुल क्यों होती हो ? तुम वस्तु-व्यवस्था को नहीं समझती इसलिये ऐसी बातें करती हो। ये सब कार्य तुम नहीं करती हो; बल्कि इन सब कार्यों के होने के काल में तुम निमित्त मात्र बनती हो। तुम्हारी सत्ता के रहते हुये भी तो प्राणियों की सांसे चलना रुक जाती है, भला ऐसा क्यों होता है ?

''तुम उपादान एवं निमित्त के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानती; इसलिये पर में फेर-बदल कर देने का झूठा अहं पालती हो। यह सब तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है। यह सब वस्तु-स्वरूप के विपरीत है''ह्न सूरज ने पुन: अपने अकाट्य तर्क प्रस्तुत किये।

ऐसा कुछ भी नहीं है। देखो ! अभी देखो !! अभी मैं अपनी शक्ति से उस व्यक्ति का कपड़ा (चादर) उतरवाकर यह सिद्ध कर देती हूँ कि परद्रव्यों में हमारा पुरुषार्थ चलता है ह्न सूरज की बातों में छिपे हुये रहस्य को समझे बिना हवा ने उतावले होते हुये कहा और फिर उसने तेजी से चलना प्रारंभ कर दिया।

हवा ज्यों-ज्यों तेज चलने लगी, त्यों-त्यों वह व्यक्ति भी सतर्क होते गया। उसने कसकर अपना चादर ओढ़ लिया। हवा तेज हुई, और तेज हुई, बहुत तेज हुई; पर वह व्यक्ति और भी मजबूती से अपने चादर को कसकर ओढ़ते हुए उकडु बैठ गया। हवा दायें से चली, बायें से चली, चारों दिशाओं से तेज होकर चली; परन्तु उस व्यक्ति ने अपना चादर नहीं उतारा।

अन्तत: वह चकराई, अब उसका चेहरा देखने लायक था।

क्यों ? क्या ख्याल है ? क्या अब भी तुम यह मानने के लिये तैयार नहीं हो कि पर में हमारा कुछ भी बस नहीं चलता। ज्ञान सम्राट सूरज ने मुस्कुराते हुये कहा।

हवा निरुत्तर हो गई। वह ओर कोई बचकाना तर्क प्रस्तुत करती उसके पहले ही सूरज बोला ह्न देखो ! अब हमारा कमाल देखो !! हम भी तुम्हें कुछ बताना चाहते हैं।

हाँ, हाँ ! बताओ - उदास हवा ने कहा।

सूरज ने तेजी से तपना प्रारंभ किया। ज्यों-ज्यों सूरज का ताप बढ़ता गया, उस व्यक्ति ने अपना चादर ढ़ीला छोड़ दिया और अन्तत: ताप (गर्मी) सहन न हो सकने के कारण उस व्यक्ति ने अपना चादर उतारकर एक तरफ रख दिया।

हवा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके मुख से अनायास ही निकल पड़ा। अरे ! आपने तो वाकई कमाल कर दिखाया।

हाँ ! लेकिन मैंने उस व्यक्ति में कुछ भी नहीं किया है। जो कुछ भी किया है, वह अपने में किया है। अपने लिये किया है। अपनी सीमा के भीतर रहकर किया है। मेरी गर्मी तो उसका कपड़ा उतारने की क्रिया में मात्र निमित्त बनी है। गर्मी से ही यदि कपड़ा उतरता तो सभी व्यक्तियों को कपड़ा उतार लेना चाहिये था; परन्तु ऐसा तो नहीं हुआ। तुमने ध्यान नहीं दिया, जिससमय उस व्यक्ति ने कपड़ा उतारा उसी समय एक अन्य व्यक्ति ने कपड़ा ओढ़ लिया, शायद उसे बुखार के कारण ठंड लग रही थी।

इन घटनाओं को देखते हुये यही सिद्ध होता है कि बाहरी अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियाँ तो निमित्त मात्र बनती हैं तथा जो भी कार्य होते हैं, वे अपनी-अपनी योग्यतानुसार स्वयमेव होते हैं।

''स्वयं परिणमते हुये को कौन परिणमावे तथा नहीं परिणमते हुये को भी कौन परिणमावे ?'' ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। इसलिये परकर्तृत्व के मिथ्या अहंकार का त्याग कर देना चाहिये ह्न ज्ञान सम्राट सूरज ने कहा।

निज शुद्धात्मा के अनुभव में सतत् लीन रहनेवाले शुद्धोपयोगी भावलिंगी मुनिराज ने जब **ज्ञानसम्राट सूरज और नादान हवा** की कहानी अपने शिष्यों को सुनाई तो शिष्यों का चेहरा प्रसन्नता से खिल गया।

कथा का समापन करते हुये मुनिराज ने आगे कहा ह्न ''निचली भूमिका में स्थित ज्ञानियों (गृहस्थों) के भी यद्यपि मान्यता तो सूरज के समान यथार्थ ही होती है; तथापि उनके कहीं लौकिक पुरुषार्थ का अभाव नहीं हो जाता; क्योंकि उनके अभी चारित्रमोह सम्बन्धी राग विद्यामान है। राग की विद्यमानता के कारण से परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास वे भी करते रहते हैं; परन्तु फिर भी उनकी मान्यता तो उससमय भी यथार्थ ही रहती है कि मेरे प्रयत्नों से कुछ भी होनेवाला नहीं है। होगा वही जो अन्तत: होने योग्य है। मेरे प्रयास तो मात्र निमित्त ही बनेंगे और इसलिये वे ज्ञानी हैं।''

वास्तव में तो अपने द्वारा होनेवाले लौकिक प्रयासों और राग के भी वे ज्ञाता ही बनते हैं, कर्त्ता नहीं और इसीलिये वे एक दिन साक्षात् ज्ञाता-दृष्टा बन जाते हैं। परकर्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त जीव संसार में इधर-उधर भटकते हुये हवा की तरह धक्के खाते रहते हैं और ज्ञातृत्व प्रकट करनेवाले जीव संसार से मुक्त होकर, ऊपर उठकर भगवान बनकर जीते हैं, अनंत सुख का भोग करते हैं; अत: ज्ञाता-दृष्टापना प्रकट करना चाहिये। इसी का नाम सम्यक् पुरुषार्थ है।

आप और हम सभी अल्पकाल में भगवान बनें और अनंत सुख को प्राप्त करें इसी भावना के साथ - ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

– जयन्तीलाल जैन, नौगामा (बांसवाड़ा-राज.)

(पृष्ठ - 3 का शेष ....)

जगत के पदार्थों में उत्पाद-व्यय-ध्रुव ह्न सब अपने-अपने कारणों से हो रहे हैं, उसमें हर्ष-विषाद का क्या काम ? ऐसा राग-द्वेष रहित ज्ञाता रहना ही पंचास्तिकाय के स्वतंत्र परिणमन के जानने का फल है।

जो पाँच अस्तिकाय हैं, उनसे तीन लोक की रचना है। उनमें आकाश, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय तो ऊर्ध्व-मध्य-अधो ह्न तीनों लोकों में प्रतिक्षण परिणमन कर रहे हैं और अखंडपने संपूर्ण लोक में व्याप्त हैं। आकाश तो अलोकाकाश में भी व्यापक है, लेकिन यहाँ लोक का वर्णन करना है अत: यहाँ आकाश को लोकव्यापक कहा है।

जीव के असंख्यप्रदेश हैं, यही जीव का कायपना है। केवली समुद्घात के समय जीव तीनलोक में व्याप्त होता है; इसकारण भी जीव में अंशकल्पना संभव है। इसप्रकार ये पाँच अस्तिकाय स्वयंसिद्ध है, उनके उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वरूप ही यह लोक है।

संसारी जीव का जो संकोच-विस्तार होता है, वह उसके असंख्यप्रदेशी अस्तिकाय के परिणमन की योग्यता से ही होता है। नामकर्म के कारण आत्मा में संकोच-विस्तार नहीं होती। सिद्धदशा में आत्मा में वैसी संकोचविस्तार की योग्यता नहीं है, इसलिए वहाँ संकोच-विस्तार नहीं होता। आत्मा में जो भी विकार होता है, वह अपने अस्तिकाय का परिणमन है; कर्म के कारण नहीं।

तात्पर्य यह है कि सिद्धभगवान जैसा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावी अस्तित्ववाला मेरा आत्मा ही मुझे उपादेय है, इसके अतिरिक्त जगत में अन्य कुछ भी मेरे लिए उपादेय नहीं है ह्न ऐसा समझना ही इस गाथा का सार है। ●

महावीर जयन्ती समारोह सानन्द सम्पन्न

1.जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 3 अप्रैल, 2004 को महावीर जयन्ती का शुभारंभ ध्वजारोहण से किया गया। तत्पश्चात् पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल का विशेष व्याख्यान हुआ। समस्त विद्यार्थियों द्वारा सामूहिक जिनेन्द्र पूजन की गई।

रात्रि में श्री टोडरमल महिला मण्डल, बापूनगर की ओर से ज्ञानवर्धक महावीर ज्ञानपहेली एवं अक्षयनिधि का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षाद्वय श्रीमती कमलाजी भारिल्ल एवं श्रीमती कंचनदेवी गंगवाल थी। अक्षयनिधि कार्यक्रम का संयोजन श्रीमती शशीजी तोतूका ने किया एवं ज्ञानपहेली कार्यक्रम का संयोजन श्रीमती सुशीलाजी जैन ने किया। कार्यक्रम का संचालन श्रीमती राजकुमारीजी जैन ने किया।

2. जयपुर : राजस्थान जैनसभा के तत्त्वावधान में महावीरजयन्ती के अवसर पर त्रिदिवसीय कार्यक्रमों का आयोजन किया गया; जिसमें दिनांक 1 अप्रैल को राजस्थान चैम्बर भवन में **भगवान महावीर के सिद्धान्त अनेकान्त एवं उसकी कथन शैली स्याद्वाद आज भी परम उपयोगी है** विषय पर एक विचारगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने अपने उद्बोधन में अनेकान्त एवं स्याद्वाद के गहन पहलुओं पर प्रकाश डाला। मुख्यवक्ता श्री महावीर राजजी गेलडा एवं श्री मुकेश जैन (आई.पी.एस., पासपोर्ट अधिकारी) जयपुर थे।

दिनांक 2 अप्रैल को प्रभात फेरी निकाली गई। 3 अप्रैल को प्रात: विशाल शोभायात्रा के उपरान्त आयोजित सभा में मुख्यअतिथि के रूप में पधारे राजस्थान के **राज्यपाल श्री मदनलालजी खुराना** ने अपने उद्बोधन में कहा कि मुझ पर जैनों का अत्यन्त उपकार है। बचपन में वर्णीजी के सान्निध्य में ही मैंने सिगरेट, शराब एवं मांस आदि का त्याग किया था, जैनत्व के इन्हीं संस्कारों के फलस्वरूप मैं आज इस मुकाम पर हूँ।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

17 से 21 अप्रैल, 2004	देवलाली	गुरुदेवश्री जयन्ती
04 से 8 मई, 2004	कोटा	पंचकल्याणक महोत्सव
09 से 26 मई, 2004	देवलाली	प्रशिक्षण-शिविर
27 मई से 25 जुलाई, 2004	अमेरिका	धर्म-प्रचारार्थ
26 जुलाई से 1 अगस्त, 2004	लंदन	धर्म-प्रचारार्थ
08 से 17 अगस्त, 2004	जयपुर	शिक्षण-शिविर

पधारें, अवश्य पधारें ...

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव

कोटा नगर में दिनांक 3 मई से 9 मई, 2004 तक होने जा रहे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पावन प्रसंग पर जैनदर्शन के मूर्धन्य विद्वान बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल', देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जयपुर आदि अनेक उच्च कोटि के विद्वानों के प्रवचनों का लाभ प्राप्त होगा। सभी साधर्मी बन्धु आयोजन में पधारकर धर्मलाभ लेवें।

- प्रतिष्ठा महोत्सव कार्यालय, भावना कॉम्प्लेक्स, छावनी चौराहा, कोटा।
फोन:0744-2361957

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा विरचित तीर्थंकर स्तवन क्रमश: यहाँ दिया जा रहा है ह्न

२१. श्री नमिनाथ स्तवन

हे नमि! तेरी अर्चन-पूजन, पापों से हमें बचाती है।
समयसार की सात्त्विक चर्चा, शिव सन्मार्ग दिखाती है।।
जिनवर! तेरी दिव्यध्वनि मम, मोह तिमिर हर लेती है।
भवभ्रमण का अन्त करा कर, मोक्ष सुलभ कर देती है।।

२२. श्री नेमिनाथ स्तवन

तीन लोक में सार बताया, वीतराग विज्ञानी को।
भव सागर में दु:खी बताया, मिथ्यात्वी अज्ञानी को।।
मुक्तिमार्ग का पथिक बताया, स्व-पर भेदविज्ञानी को।
सहज स्वभाव सरलता से सुन! नेमिनाथ की वाणी को।।

२३. श्री पार्श्वनाथ स्तवन

पारस पत्थर छूने से ज्यों, लोह स्वर्ण हो जाता है।
पार्श्वप्रभु की शरणागत से, पाप मैल धुल जाता है।।
जो भी शरण गहे पारस की, आनँद मंगल गाता है।
पार्श्व प्रभु के आराधन से, पतित पूज्यपद पाता है।।

२४. श्री महावीर स्तवन

जो निज दर्शन ज्ञान चरित अरु, वीर्य गुणों से हैं महावीर।
अपनी अनन्त शक्तियों द्वारा, जो कहलाते हैं अतिवीर।।
जिसके दिव्य ज्ञान दर्पण में, नित्य झलकते लोकालोक।
दिव्यध्वनि की दिव्यज्योति से, शिवपथ पर करते आलोक।।

जिन-सा निज को जानकर, जो ध्याते निजरूप।
वे पाते अरिहन्त पद, भोगें सुख भरपूर।।

आवेदन भेजें

1. **खनियांधाना (शिवपुरी-म.प्र.):** यहाँ श्री महावीर कुन्दकुन्द कहान नंदीश्वर दिग. जैन विद्यापीठ का शुभारंभ हो चुका है। वर्तमान में कक्षा 6 से 8 वीं तक के 30 छात्र नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। नवीन सत्र में कक्षा-9 भी प्रारंभ की जा रही है। जुलाई 2004 से प्रारंभ होनेवाले सत्र में कक्षा 5 वीं उत्तीर्ण छात्रों को कक्षा-6 में योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जायेगा। छात्रों के शिक्षण, आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था है। इच्छुक छात्र आवेदन भेजें।

2. कक्षा 6 से 10 वीं के विद्यार्थियों को पढ़ाने हेतु एक अंग्रेजी/गणित विषय के अध्यापक की तथा छात्रावास के अधीक्षक के साथ संस्कृत विषय के अध्यापन हेतु एक शास्त्री, बी.एड. अध्यापक की आवश्यकता है। सम्पूर्ण जानकारी एवं रंगीन पासपोर्ट फोटो सहित आवेदन करें।

– प्राचार्य, श्री नन्दीश्वर विद्यालय,
चेतनबाग, खनियांधाना, जिला- शिवपुरी (म.प्र.) 473990
फोन - 07497-235474, 235450

आचार्य अकलंक शिक्षण संस्थान का शुभारंभ

बांसवाड़ा (राज.) : यहाँ श्री ज्ञायक चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा आचार्य अकलंक शिक्षण संस्थान का शुभारंभ किया गया है। जो भी आत्मार्थी छात्र कक्षा 10 वीं की परीक्षा उत्तीर्णकर 11वीं (कनिष्ठ उपाध्याय) में जैनदर्शन के अध्ययन के इच्छुक हों, उन्हें संस्थान में प्रवेश दिया जायेगा। संस्थान में रहनेवाले छात्रों को राजकीय विद्यालय/महाविद्यालय गनोड़ा के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान एवं राजस्थान संस्कृति विश्वविद्यालय जयपुर द्वारा 12 वीं (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं बी.ए. (शास्त्री) की उपाधि प्रदान की जायेगी। संस्थान द्वारा छात्रों को आवास, भोजन एवं विद्यालय आने-जाने की सुविधा नि:शुल्क प्रदान की जायेगी; साथ ही संस्थान में धार्मिक शिक्षण, संस्कृत, अंग्रेजी, कम्प्यूटर आदि की योग्य शिक्षण व्यवस्था भी दी जायेगी। इस वर्ष कनिष्ठ उपाध्याय कक्षा में मात्र 10 विद्यार्थियों को ही प्रवेश दिया जायेगा।

छात्रों का प्रवेश-पात्रता शिविर जून के प्रथम सप्ताह में आयोजित होगा। प्रवेश के इच्छुक छात्र निम्न पते से प्रार्थना-पत्र प्राप्त कर सकते हैं।

ह्न राजकुमार जैन, जैनदर्शनाचार्य
आ.अकलंक शिक्षण संस्थान, 1/15, खान्दू कॉलोनी, बांसवाड़ा (राज.)
फोन - 02962-248975

विभिन्न अवसरों पर प्राप्त दान राशियाँ

1. श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन कोल्हापुर की ओर से चि. अनिलकुमार के विवाहोपलक्ष्य में 501/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

2. श्री सुरेशकुमारजी जैन कंठालिया भीण्डर की ओर से 501/- रुपये जैनपथप्रदर्शक समिति को प्राप्त हुये हैं।

3. श्री हुकमचन्दजी ओंकारलालजी सिंघवी (जैन) की ओर से जैनपथ प्रदर्शक समिति एवं वीतराग-विज्ञान को 501/-रुपये प्राप्त हुये हैं।

4. श्री गोडीचन्दजी भीमराजजी मेहता के देहावसान पर 200/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

सभी को धन्यवाद ज्ञापित करते हुये हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी इसीतरह आपका सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा। **– प्रबन्ध सम्पादक**

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) अप्रैल (द्वितीय) 2004
J. P.C. 3779/02/2003-05

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए.जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन तथा इतिहास ❊ **पं. जितेन्द्र वि.राठी शास्त्री**
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127